कला-संस्कृति की मिसाल हैं ये प्रेम की धरोहर

प्यार केवल एहसास नहीं होता, कई बार वह पत्थरों में ढलकर इतिहास बन जाता है। दुनिया के अलग-अलग कोनों में खड़ी कुछ इमारतें इस बात की गवाह हैं कि जब प्रेम गहरा होता है, तो वह समय, दूरी और मृत्यु की सीमाओं को भी पार कर जाता है। कहीं ये महल किसी प्रिय को दिया गया अधूरा उपहार है, तो कहीं टूटे दिल की खामोश पुकार। किसी ने प्रेमिका के लिए पुल बनवाया, तो किसी ने पत्नी की याद में पूरी उम्र एक ही महल तराश दिया। इन स्मारकों की दीवारों में सिर्फ ईंट-पत्थर नहीं, बल्कि उम्मीद, समर्पण, पीड़ा और अमर मोहब्बत की कहानियां बसती हैं। बोल्ट कैसल से लेकर कोरल कैसल, शैटो डी चेनोन्सो से ताजमहल तक ये सभी स्थान यह बताते हैं कि सच्चा प्यार भले ही अधूरा रह जाए, लेकिन उसकी निशानी हमेशा के लिए जीवित रहती है। ये स्मारक प्रेम में पगे आशिकों के दिलों में व्याप्त गहरी भावनाओं को दर्शाते हैं।

शिखर चंद जैन
लेखक

शैटो डी चेनोन्सो, फ्रांस

फ्रांस का यह भव्य महल 'महिलाओं का महल' कहलाता है। शैटो डी चेनोन्सो की दीवारों में प्यार और प्रतिद्वंद्विता की निशानियां दफन हैं। 1547 में फ्रांस के राजा हेनरी द्वितीय ने इसे अपनी प्रेमिका डायने डी पोइटियर्स को उपहार में दिया। डायने ने ही शेर नदी पर बना वह प्रसिद्ध मेहराबदार पुल बनवाया, जो आज इस महल की पहचान है। राजा की मृत्यु के बाद, रानी कैथरीन डी मेडीसी ने डायने को महल से निकाल दिया और स्वयं यहां शासन किया। इस तरह यह महल प्रेम और प्रतिद्वंद्विता दोनों का प्रतीक बन गया।

बोरी कैसल, हंगरी

हंगरी के सेकेसफेहेरवार में स्थित बोरी कैसल प्रेम और समर्पण की जीवंत मूर्ति है। मूर्तिकार और वास्तुकार जेनो बोरी ने इसे अपनी पत्नी इलोना बोरी के प्रति अटूट प्रेम के प्रतीक के रूप में 1923 से लेकर लगभग 40 वर्षों तक अपने हाथों से बनाया। महल में मौजूद मूर्तियां, चित्रकला और ऊंचा टॉवर उनकी पत्नी को समर्पित हैं। यह स्थान आज दुनियाभर के प्रेमियों के लिए प्रेरणा का केंद्र है।

जूलियट का घर, इटली

वेरोना स्थित कासा डि गिउलिएटा शेक्सपियर के अमर प्रेम रोमियो और जूलियट की याद दिलाता है। 13 वीं सदी की यह ऐतिहासिक इमारत कैप्पेलो स्ट्रीट पर स्थित है, जहां वह प्रसिद्ध बालकनी और जूलियट की कांस्य मूर्ति मौजूद है। हालांकि जूलियट एक काल्पनिक पात्र है, फिर भी यह स्थान प्रेम का वैश्विक प्रतीक बन चुका है। मान्यता है कि जूलियट की मूर्ति के दाहिने हाथ को छूने से प्रेम में सौभाग्य मिलता है। इसी विश्वास से यहां हर दिन हजारों प्रेमी आते हैं।

बोल्ट कैसल, न्यूयॉर्क

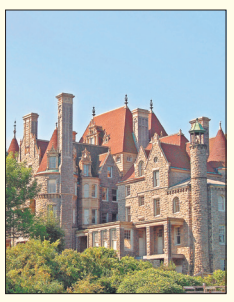

बोल्ट कैसल एलेक्जेंड्रिया बे, न्यूयॉर्क में हार्ट आइलैंड पर स्थित एक शानदार ऐतिहासिक महल और एक लोकप्रिय पर्यटक आकर्षण है। इसे जॉर्ज सी. बोल्ट ने अपनी पत्नी लुईस के लिए प्यार की निशानी के तौर पर बनवाना शुरू किया था, लेकिन उनके निधन के बाद यह अधूरा रह गया। यह एक छह मंजिला, 120 कमरों वाली राइनलैंड-शैली की संरचना है। इसका निर्माण 1900 में शुरू हुआ था, लेकिन जनवरी 1904 में लुईस की अचानक मृत्यु के बाद जॉर्ज बोल्ट का मन टूट गया। फिर उन्होंने इसे अधूरा छोड़ दिया और फिर कभी वापस नहीं लौटे।

हमारा ताजमहल

मुगल सम्राट शाहजहां द्वारा अपनी पत्नी मुमताज महल की याद में बनवाया गया ताजमहल दुनिया में प्रेम का सबसे महान प्रतीक माना जाता है। 1631 में शुरू होकर 1653 में पूरा हुआ यह मकबरा लगभग 22,000 कारीगरों की मेहनत का परिणाम है। राजस्थान के मकराना से लाए गए शुद्ध सफेद संगमरमर पर कीमती पत्थरों की पच्चीकारी इसे बेमिसाल बनाती है। ताजमहल न केवल भारत, बल्कि पूरी दुनिया के लिए प्यार की सबसे खूबसूरत निशानी है।

शालीमार बाग, कश्मीर

श्रीनगर में स्थित शालिमार बाग मुगल प्रेम और सौंदर्य का अनुपम उदाहरण है। इसे मुगल बादशाह जहांगीर ने 1619 में अपनी प्रिय पत्नी नूरजहां के लिए बनवाया था। 'चहार बाग' शैली में निर्मित यह उद्यान तीन छतों में बंटा है, जिनमें फव्वारे, जलधाराएं, चिनार के वृक्ष और दीवान-ए-आम व दीवान-ए-खास जैसे मंडप हैं। डल झील के किनारे स्थित यह बाग यूनेस्को की अस्थायी विश्व धरोहर सूची में भी शामिल है।

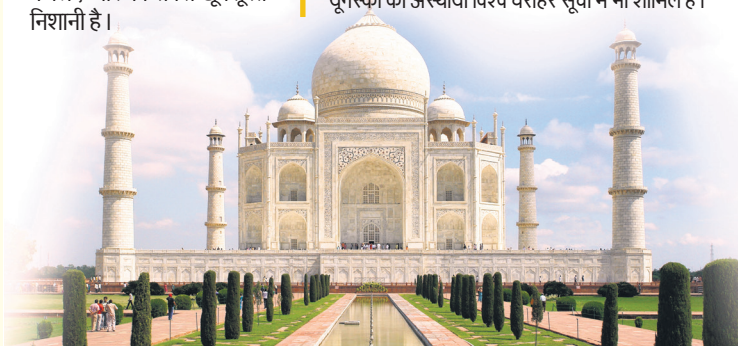

कोरल कैसल, फ्लोरिडा, यूएस

कोरल कैसल शायद दुनिया की सबसे रहस्यमयी प्रेम-रचना है। इसे लातवियाई-अमेरिकी प्रवासी एडवर्ड लीडस्कैलनिन ने 1923 से 1951 के बीच अकेले बनाया। 1100 टन से अधिक कोरल पत्थरों से बना यह ढांचा 'फ्लोरिडा का स्टोनहेंज' कहलाता है। एडवर्ड का कद और शरीर साधारण था, फिर भी उन्होंने बिना आधुनिक मशीनों के यह असंभव कार्य कर दिखाया। शादी से ठीक पहले मंगेतर एग्नेस द्वारा छोड़े जाने के बाद, टूटे दिल से उन्होंने इसे प्रेम-स्मारक के रूप में गढ़ा। वे दावा करते थे कि उन्हें मिस्र के पिरामिडों के निर्माण का रहस्य चुंबकत्व और उत्तोलन आता है।

एलेनोर क्रॉसेस, इंग्लैंड

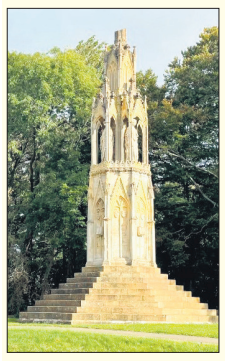

13 वीं सदी में इंग्लैंड के राजा एडवर्ड प्रथम ने अपनी पत्नी एलेनोर ऑफ कैस्टिले की स्मृति में 12 भव्य पत्थर क्रॉस बनवाए। 1290 में रानी की मृत्यु के बाद, उनके अंतिम संस्कार के जुलूस के दौरान लिंकन से लंदन तक जहां-जहां रात्रि विश्राम हुआ, वहां ये क्रॉस स्थापित किए गए। आज इनमें से केवल तीन गेडिंगटन, हार्डिंगस्टोन और वाल्थम मूल रूप में बचे हैं। ये क्रॉसेस आज भी शाश्वत प्रेम के प्रतीक माने जाते हैं।

अनोखी परंपरा

गर्दन की लंबाई में बंधी खूबसूरती

सुंदरता की परिभाषा हर समाज में अलग-अलग होती है। जहां आधुनिक दुनिया में सुंदरता को चेहरे, पहनावे या स्टाइल से जोड़ा जाता है, वहीं म्यांमार की कयान जनजाति में सुंदरता का पैमाना बिल्कुल अनोखा है। यहां महिलाओं की खूबसूरती उनकी गर्दन की लंबाई से आंकी जाती है। माना जाता है कि जितनी लंबी गर्दन, उतनी ही अधिक सुंदर महिला। कयान जनजाति की लड़कियां महज पांच वर्ष की उम्र से ही गर्दन में पीतल की अंगूठियां पहनना शुरू कर देती हैं। शुरुआत में ये अंगूठियां हल्की होती हैं, लेकिन जैसे-जैसे उम्र बढ़ती है, वैसे-वैसे इनकी संख्या और वजन भी बढ़ाया जाता है। यह प्रक्रिया कई घंटों तक चलती है और धीरे-धीरे वर्षों में पूरी होती है। लगातार दबाव के कारण कंधों और पसलियों की हड्डियां नीचे की ओर खिसक जाती हैं, जिससे गर्दन लंबी दिखाई देने लगती है। वास्तव में गर्दन नहीं बढ़ती, बल्कि शरीर की संरचना बदल जाती है। एक पूरा सेट 10 से 20 किलो तक वजनी हो सकता है। इतना भारी वजन पहनकर रोजमर्रा का जीवन आसान नहीं होता। खेतों में काम करना, झुकना, चलना-फिरना सब कुछ कठिन हो जाता है। कई महिलाएं लगातार दर्द, थकान और असहजता के साथ जीवन बिताती हैं। बावजूद इसके, वे इसे अपनी नियति और पहचान मानकर सहन करती हैं।

दिलचस्प बात यह है कि यह परंपरा शुरुआत में सुंदर दिखने के लिए नहीं, बल्कि महिलाओं को कम आकर्षक बनाने के उद्देश्य से शुरू हुई थी। मान्यता थी कि लंबी गर्दन और भारी गहनों के कारण दूसरी जनजातियों के लोग उन्हें अगवा नहीं करेंगे। समय के साथ यह प्रथा सुरक्षा से निकलकर संस्कृति और पहचान का प्रतीक बन गई। आज की युवा पीढ़ी इस परंपरा को बोझ के रूप में देखने लगी है। कई लड़कियां अब इन अंगूठियों को पहनने से इनकार कर रही हैं। वहीं दूसरी ओर, उत्तरी थाईलैंड में पर्यटन के कारण कयान महिलाओं के ये गहने फिर से चर्चा में आ गए हैं। पर्यटकों को आकर्षित करने के लिए यह परंपरा अब आजीविका का साधन भी बन चुकी है। कई बुजुर्ग कयान महिलाएं आज भी जीवनभर ये अंगूठियां नहीं उतारतीं और इसे अपनी अस्मिता मानती हैं। यह परंपरा सुंदरता और संस्कृति दोनों का प्रतीक है, लेकिन यह सवाल अब भी बना हुआ है कि क्या यह सच में सुंदरता का पैमाना है या महिलाओं पर थोपी गई एक सामाजिक जिम्मेदारी?

आर्ट गैलरी

जोहांस वर्मीर की 'द गर्ल विद अ पर्ल इयर रिंग'

जैन वर्मीर की 'गर्ल विद अ पर्ल इयररिंग' डच रियलिस्ट जॉनर पेंटिंग का एक मास्टरपीस है। इसे 'द हेड ऑफ अ यंग वुमन', 'पोर्ट्रेट ऑफ अ यंग वुमन विद अ टर्बन', 'वुमन इन ओरिएंटल ड्रेस' और 'गर्ल विद अ पर्लबन' भी कहा जाता है। इस कमाल की पेंटिंग में एक काल्पनिक जवान औरत को दिखाया गया है, जो शानदार कपड़े पहने अंधेरे से निकल रही है। यह फिगर सीधे देखने वाले की आंखों में देखती है और उसे अपनी ओर खींचती है। उसकी अनोखी ड्रेस और मोती की इयररिंग रोशनी और अंधेरे में से दिखती है, जिसे वर्मीर ने अपनी जादुई ब्रश से परफेक्ट किया है। वर्मीर ने ध्यान खींचने और इंटेंसिटी बनाने के लिए रंगों पर अपने जबरदस्त कंट्रोल का कुशलता से इस्तेमाल किया। इस रचना में, उन्होंने पेंटिंग के पीछे की कहानी को बताने के लिए रंगों का इस्तेमाल कंट्रास्ट के तौर पर किया। उनके टोन की समझ उनकी सबसे दिलचस्प तस्वीरों में से एक में जान डाल देती है। एक जवान लड़की, जिसने हल्के ओरिएंटल कपड़े पहने हैं और जिसके सिर पर एक मोती की इयररिंग है।

वर्मीर के बारे में

जोहांस वर्मीर की मशहूर बारोक स्टाइल, रोजमर्रा की जिंदगी की चमकदार कंपोजिशन थीं, जो रोशनी और रंगों पर उनकी महारत को दिखाती हैं। उनके काम में अक्सर रोजमर्रा के घरेलू सीन होते हैं, जो डिटेल पर उनके जबरदस्त ध्यान को दिखाते हैं। उनका जन्म अक्टूबर 1632 में हुआ और निधन 15 दिसंबर 1675 को। वो डच पेंटर थे, उन्हें डच गोल्डन एज के सबसे महान पेंटर में से एक माना जाता है। अपने जीवनकाल में, वे एक सफल प्रांतीय शैली के पेंटर थे, जिन्हें डेल्फ़्ट और द हेग में पहचान मिली। उन्होंने काफी कम पेंटिंग बनाईं, मुख्य रूप से एक आर्ट डीलर के तौर पर अपनी जिंदगी चलाते थे। वे अमीर नहीं थे, उनकी मौत के समय, उनकी पत्नी कर्ज में डूबी हुई थीं। द गर्ल विद अ पर्ल इयररिंग शायद वर्मीर का सबसे मशहूर आर्टवर्क है। इसमें एक जवान लड़की को एक अनोखी पगड़ी और बड़ी मोती की इयररिंग पहने दिखाया गया है। यह पेंटिंग अपनी शानदार कंपोजिशन, चटकीले रंगों और रहस्यमयी सब्जेक्ट मैटर से देखने वालों का ध्यान खींचती है। हालांकि अक्सर इसकी तुलना 'डच मोना लिसा' से की जाती है, लेकिन यह बहुत कम समझ है कि यह जवान औरत कौन थी या वर्मीर के साथ उसका क्या कनेक्शन था।

लोकायन

बसोहली चित्रकला: रंग, भक्ति और सौंदर्य का संगम

भारतीय लघु चित्रकला की समृद्ध परंपरा में बसोहली चित्रकला एक ऐसी विशिष्ट शैली है, जिसमें रंगों की तीव्रता, भावों की स्पष्टता और भक्ति की गहराई एक साथ सजीव हो उठती है। इसका विकास जम्मू क्षेत्र के बसोहली इलाके में हुआ, जहां लोक परंपराओं, पौराणिक कथाओं और दरबारी कला ने मिलकर एक अनोखी चित्रभाषा को जन्म दिया। बसोहली शैली वस्तुत: हिंदू, मुगल और पहाड़ी कलात्मक परंपराओं के सुंदर समन्वय का परिणाम है।

बसोहली शैली में मुगल चित्रकला की झीनी पारदर्शी वेशभूषा और दरबारी ठाठ दिखाई देता है, जबकि चेहरों की बनावट, भाव-भंगिमा और आकृतियां स्थानीय लोक कला से प्रेरित हैं। बसोहली चित्रकला पर हिंदू धर्म और परंपरा का गहरा प्रभाव रहा। विष्णु और उनके दशावतार, विशेषकर श्रीकृष्ण, इस कला के प्रमुख नायक हैं। रामायण, महाभारत और जयदेव कृत 'गीत गोविंद' जैसे ग्रंथों पर आधारित चित्र श्रृंखलाएं इस शैली को आध्यात्मिक ऊंचाई प्रदान करती हैं।

बसोहली चित्रकला का स्वर्णकाल संग्राम पाल (1635-1673 ई.) और कृपाल पाल (1678-1693 ई.) के शासनकाल में माना जाता है। संग्राम पाल के समय वैष्णववाद को राजकीय संरक्षण प्राप्त हुआ, जिसके फलस्वरूप प्रारंभिक बसोहली चित्रों में 'रसमंजरी' श्रृंखला का विशेष महत्व रहा। इन चित्रों में कृष्ण को नायक रूप में चित्रित किया गया है। गाढ़े और चमकीले रंग लाल, पीला और नीला सपाट पृष्ठभूमि के साथ मिलकर चित्रों को तीव्र दृश्य प्रभाव प्रदान करते हैं। चेहरों में उभरी हुई नाक, कमल-सी आंखें और भावपूर्ण दृष्टि बसोहली शैली की पहचान हैं। स्त्री और पुरुष दोनों की वेशभूषा मुगल और राजपूत दरबारों से मेल खाती है। चित्रों में दर्शित भवन, आलिंद, जटिल जड़ाइयां और सुसज्जित भीतरी कक्ष मुगल और राजपुताना स्थापत्य की स्मृति कराते हैं।

आभूषणों का अंकन इस शैली की सबसे विलक्षण विशेषता है। मोतियों के लिए उभरे हुए सफेद रंग और पन्नों की आभा दिखाने हेतु झींगुर के पंखों के आवरणों का प्रयोग कलाकारों की कल्पनाशीलता और तकनीकी दक्षता को दर्शाता है। कृपाल सिंह के संरक्षण में बसोहली चित्रकला का उत्तरवर्ती चरण विकसित हुआ, जिसमें प्रकृति के प्रति झुकाव और कलात्मक परिष्कार अधिक दिखाई देता है। इस काल में चित्रकार मनकू द्वारा रचित 'गीत गोविंद श्रृंखला' विशेष रूप से उल्लेखनीय है। 18 वीं शताब्दी के मध्य तक बसोहली शैली न केवल जीवित रही, बल्कि अन्य पहाड़ी क्षेत्रों की चित्रकला को भी एक ऐसी विरासत के रूप में, दिशा देती चली गई, जिसमें रंग, भक्ति और सौंदर्य एक साथ सांस लेते हैं।

ओरिएंटलिज्म, भारतीय कला परंपरा और औपनिवेशिक व्याख्या का सच

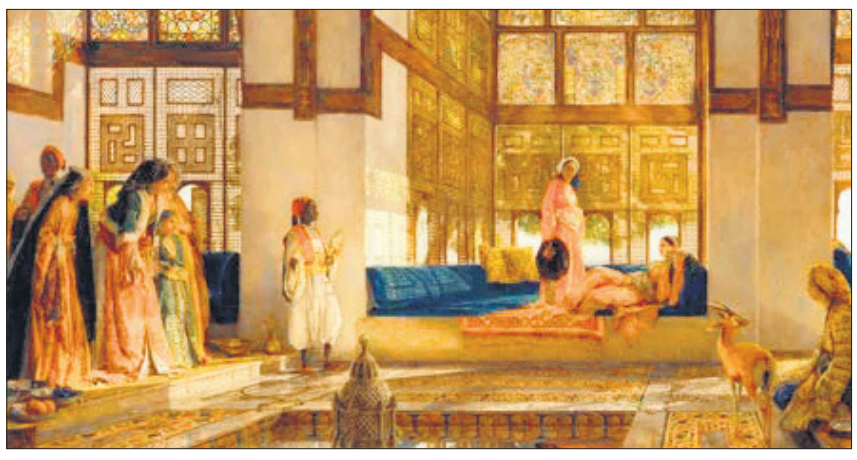

पहली बार एडवर्ड वादी सईद (1935–2003) की पुस्तक "ओरिएंटलिज्म" (1978) ने यह स्थापित किया कि 'पूरब' को लेकर पश्चिमी ज्ञान-परंपरा एक तटस्थ बौद्धिक परियोजना नहीं थी, बल्कि सत्ता, उपनिवेशवाद और वर्चस्व से गहराई से जुड़ी हुई थी। सईद के अनुसार ओरिएण्टलिज्मएक ऐसी ज्ञान-प्रणाली है, जो पूर्व को रहस्यमय, स्थिर, पिछड़ा और अपरिवर्तनशील दिखाकर पश्चिमी श्रेष्ठता को वैध ठहराती है। यह अवधारणा अकादमिक अनुशासन, विचारधारात्मक द्वैत (पूरब-पश्चिम) और औपनिवेशिक शासन के औजार तीनों स्तरों पर कार्य करती है।

भारतीय कला-इतिहास के संदर्भ में यह प्रश्न और भी महत्वपूर्ण हो जाता है कि क्या औपनिवेशिक काल में भारतीय कला पर हुआ समस्त पश्चिमी अध्ययन केवल ओरिएंटलिस्ट पूर्वाग्रहों से प्रेरित था या उस दौर में कुछ ऐसे विद्वान भी थे, जिन्होंने भारतीय कला परंपरा को समझने और प्रतिष्ठित करने का गंभीर प्रयास किया। यहीं सईद के निष्कर्षों की आंशिक पुनर्व्याख्या की जरूरत सामने आती है। ई.बी. हैवेल को ऐसे ही अपवादों में गिना जा सकता है। उन्होंने भारतीय कला को यूरोपीय यथार्थवाद के मानकों से मुक्त करके उसके आंतरिक सौंदर्यशास्त्र और आध्यात्मिक दृष्टि के आधार पर समझने का आग्रह किया। 'इंडियन स्कल्पचर एंड पेंटिंग' (1908) में हैवेल भारतीय कला को 'नकलची' या 'अधूरा' मानने वाली औपनिवेशिक धारणा का खंडन करते हैं। इस अर्थ में हैवेल सईद के ओरिएण्टलिज्ममॉडल में एक महत्वपूर्ण अपवाद प्रतीत होते हैं।

वहीं लॉकवुड किपलिंग का योगदान भारतीय शिल्प परंपराओं के दस्तावेजीकरण में उल्लेखनीय रहा। लाहौर म्यूजियम और मेयो स्कूल ऑफ आर्ट से जुड़ाव के माध्यम से उन्होंने भारतीय हस्तकला को 'निम्न कला' मानने की मानसिकता का विरोध किया। किंतु उनकी दृष्टि अक्सर भारतीय कला को एक 'एथ्नोग्राफिक वस्तु' के रूप में देखती है, न कि एक जीवित समकालीन सृजन के रूप में यहां सईद की आलोचना आंशिक रूप से लागू होती है।

सुमन कुमार सिंह
कलाकार/कला लेखक

अलेक्जेंडर कनिंघम के कार्य भारतीय पुरातत्व और स्थापत्य की खोज और संरक्षण में ऐतिहासिक महत्व रखते हैं। सारनाथ, सांची और बोधगया जैसे स्थलों की पहचान उनके प्रयासों से संभव हुई। परंतु सईद की दृष्टि से यह ज्ञान भी औपनिवेशिक प्रशासन के अधीन था, जहां भारतीय अतीत को 'मृत गौरव' के रूप में प्रस्तुत कर समकालीन समाज से काट दिया गया। इस प्रकार यह संरक्षण और नियंत्रण दोनों का उदाहरण बनता है। सईद के विचारों को आगे बढ़ाने वाले उत्तर औपनिवेशिक विद्वानों में होमी के. भाभा, गायत्री चक्रवर्ती स्पिवाक, रोनाल्ड इंडन और पार्थ चटर्जी प्रमुख हैं। भाभा ने 'हाइब्रिडिटी', 'मिमिक्री' और 'थर्ड स्पेस' की अवधारणाओं के माध्यम से यह दिखाया कि औपनिवेशिक सत्ता स्थिर नहीं होती और उपनिवेशित समाज सांस्कृतिक स्तर पर उसे चुनौती देते हैं। स्पिवाक ने 'सबऑल्टर्न' की आवाज और प्रतिनिधित्व की राजनीति पर सवाल उठाए, यह रेखांकित करते हुए कि ज्ञान के नाम पर बोलना भी सत्ता का रूप हो सकता है।

रोनाल्ड इंडन ने 'इमेजिनिंग इंडिया' में भारत को स्थिर और रहस्यवादी दिखाने वाली औपनिवेशिक कल्पनाओं की आलोचना की और भारतीय समाज की ऐतिहासिक तथा बौद्धिक गतिशीलता पर जोर दिया। पार्थ चटर्जी ने राष्ट्रवाद और उपनिवेशी ज्ञान के संबंध को विश्लेषित करते हुए बताया कि भारतीय राष्ट्रवाद एक साथ प्रतिरोधी भी रहा और औपनिवेशिक श्रेणियों से सीमित भी। समकालीन संदर्भ में देखें तो वैश्विक कला बाजार, बिएनाले और म्यूजियम में ओरिएण्टलिज्मके नए रूप दिखाई देते हैं। भारतीय कला को 'एक्सॉटिक' या 'स्पिरिचुअल' लेबल में बांधना, लोक और आदिवासी कलाओं को 'अनाम' बनाकर प्रस्तुत करना तथा कलाकारों से पहचान की राजनीति की अपेक्षा करना। ऐसे में सईद का चिंतन आज भी प्रासंगिक बना हुआ है।

अंततः कहा जा सकता है कि ओरिएण्टलिज्म भारतीय कला-इतिहास के लिए एक शक्तिशाली आलोचनात्मक औजार है, किंतु इसे पूर्ण सत्य के रूप में नहीं, बल्कि विवेकपूर्ण विवेचना के साथ अपनाने की आवश्यकता है। औपनिवेशिक दौर में जहां भारतीय कला को हेय दृष्टि से देखा गया, वहीं कुछ विद्वानों ने उसे वैश्विक मंच पर प्रतिष्ठित भी किया। भारतीय कला-इतिहास का न्यायपूर्ण लेखन तभी संभव है, जब इन दोनों प्रवृत्तियों को साथ-साथ समझा जाए।